मंकीमैन के नाम खुला ख़त

पुरुषोत्तम अग्रवाल

माई डियर मंकीमैन,

जय रामजी की! खरी चिट्ठी है भैया यह जिसमें यारी और थोड़ी सी अय्यारी छुट किसी मक्कारी का पुट करने वाले बच के जाएँगे कहाँ? तुम्हारे बुद्धिविदारक कारनामे और हृदयविदारक स्टीलीय नाखून कहाँ किसको छोड़ेंगे? हाँ इतनी ख़ता ज़रूर है कि यह चिट्ठी जो कॉन्फ़िडेंशियल होनी थी, पब्लिक हो रही है; लेकिन इस ख़ता की ज़िम्मेवारी भी मेरी नहीं संपादक की है; सो अगर कुछ पोटा-वोटा लगवाना हो या भाई श्री नरेन्द्र मोदी के हवाले करवाना हो या खुद ही चिपट कर मज़ा चखाना हो तो प्रभु भूल मत जाना कि बंदा ट्रांस यमुना में रहता है जो वैसे भी तुम्हारा फ़ेवरिट एरिया ऑफ़ इन्फ़्लुएन्स — राष्ट्रभाषा में प्रभावक्षेत्र — था।

मित्र, जब तुम्हारा प्रादुर्भाव तरणि तनूजातट स्थित इंद्रप्रस्थ प्रांत में हुआ जिसे यवणोपरांत म्लेच्छ प्रभावाक्रांत कुजन दिल्ली कहते हैं, मैं दैववशात् सुतल में था। वही सुतल जिसे आर्य विरोधी अनार्यों ने, धर्मद्रोही दुष्टों ने ऑस्ट्रेलिया नाम दे रखा है। तुम्हारे पराक्रमों के समाचार वहाँ मिलते थे तो मन मयूर आनंदमत्त हो नृत्यरत हो उठता था। तुम्हारे विक्रांत विक्रम ने, हे नर-वानर, कैसे-कैसे नरपुंगवों की पुंगी बजा के रख दी! धन्य हो तुम! दुग्धपानकर्ता सर्वविघ्नहर्ता गणेश जी के श्रेष्ठ उत्तराधिकारी हेल्मेटधारी हे हाइटेक मर्कटमुख, तुमको शत-शत प्रणाम! जम्बू द्वीपे-भारतखंडे इंद्रपस्थ प्रांतेषु प्रकटने वाले हम सबके भविष्य, भूत और वर्तमान — स्वीकार करो इस परम प्रशंसक का स्तुति गान।

बंधुवर, यों तो आजकल के ज्ञानी ध्यानी हर उस प्राणी को संस्कृत का ज्ञाता मान लेते हैं जिसका नाम ही तनिक सा भी प्राचीनता-पावनता-स्पर्शित हो। अपना तो मामला ऐसा मूर्धन्य है कि जन्म से लेकर आज तक तो अपन इसका सही उच्चारण नहीं कर पाए। लिख भले ही लें, लेकिन बोलने में तो अपनी काया जैसे पृथुल प्रयत्नोपरांत भी ससुरा 'पुरुसोत्तम' ही ठहरता है।

II

इस मध्यान्तरीय भूमिका की आवश्यकता यों पड़ी मान्यवर कि अब आगे यह संगणकोपयुक्त देवभाषा अपने से संभाले नहीं संभलेगी, सो भलाई इसी में है कि अब अपन अपनी औक़ात — अर्थात् आर्यभाषा — अर्थात् हिन्दी माता की अंगुली पकड़ कर आगे बढ़ें। यो भी भाषा में क्या रखा है? आजकल तरह-तरह के 'अंत' हुए चले जा रहे हैं तो भाषा भी ससुरी कहाँ तक बचेगी? और भैया, हमें तो तुम्हारे वंडरफुल — बल्कि बंदरफुल कारनामों से ही मतलब है — सो हिन्दी में ही वापस जाएँ!

इतना तो सब जानते हैं; कोई-कोई मानते भी हैं कि ये ज़माना ही भाँत-भाँत की वापसियों का है। हालाँकि इन वापसियों का राज़ क्या है — यह न मानने वाले जानते हैं, न जानने वाले। धर्म की वापसी हो रही है, जात की वापसी हो रही है, पहचान की वापसी हो रही है... और तो और एन.आर.आईज़ की वापसी हो रही है। दनादन दे दनादन। हालाँकि इनडायरेक्टली। एन.आर.आईज़ की आईज़ जब मदरलैंड की हीट ऐण्ड डस्ट की

याद से और पावर लस्ट की फ़रियाद से गीली होती हैं तो बेचारे भरे गले से गा उठते हैं — 'आई लव माय इंडिया।'... 'ऐक्शन का इंडिया...' अंत-पंत आई तो वहीं ग्रीनकार्ड के ग्रीन पास्चर में हरी-हरी चरता रहता है और 'लव' इंडिया माई की छाती पर मूँग दलने चला आता है; मूँग दलने का ऐक्शन कभी मंदिर फ़ंड का रूप ले लेता है तो कभी इकनॉमिक मिरेकल के स्टंट का! कुछ लोगों के पास वापस पहुँचने का कोई ठौर नहीं बचा तो जड़ों की ओर ही वापस लपक लिए हैं। अब इस लपक-झपक में जड़प्रेमी जड़मति हो जाए तो बुरा मानने की क्या बात? और कोई बुरा मान ही जाए तो परवाह करे अपना कुतका लात।

सो, वापसियों के थोक के थोक वापस चले आ रहे हैं। ऐसे में आपकी तो एकदम बेसिक — बल्कि रैडिकल वापसी थी बॉस! एकदम टू द रूट्स — अकबर इलाहाबादी की शिकायत, ज्ञानी ज़ैलसिंह की मलामत और डार्विन क्रिएशनिस्टों की हजामत के बावजूद — डार्विन को सही मानें तो एकदम टंच वापसी थी बॉस, एकदम टंच! ऊपर से मज़ा यह कि थिंक ग्लोबल-ऐक्ट लोकल कॉर्पोरेट प्लस एन.जी.ओ. प्रमाणित इडियम के सर्वथा अनुकूल भी। बाक़ी वापसियाँ डिफ़रेंट और स्पेसिफ़िक की वापसियाँ हैं, आइडेंटिटी की वापसियाँ हैं — आप तो पूज्यवर हम सबकी यूनिवर्सैलिटी और उसकी रूट्स — जड़ों की वापसी थे। लेकिन साथ ही क्या कहने इस वापसी के अनमिस्टेकेबल लोकल टच के, हेल्मेट विभूषित आपका मुखमंडल बंधु भव्य बल्कि इरॉटिक तो लगता ही था — ख़ास दिल्ली की ख़ास पहचान भी तो बताता था। आपने याद दिलाया हम दिल्ली वालों को हमारा भविष्य कि बिना हेल्मेट पहने अब अपने घर में क्या बिस्तर में घुसना भी सेफ़ नहीं रहने वाला। हालाँकि हेल्मेट भी किसी का क्या उखाड़ लेगा, लाला? यह भी तो आपने ही अपने कपोलविदारक हृदयद्रावक तीक्ष्ण नख समूह से सिद्ध कर डाला। इसीलिए अपन कहते भए कि आप ग्लोबल की भी वापसी थे, लोकल की भी। साइलेंट की वापसी थे, वोकल की भी।

III

यह चिट्ठी आपका अमूल्य समय नष्ट करने के लिए नहीं लिखी जा रही, महामहिम मंकी-मानव। यों तो मैंने *दीवान-ए-सराय* के संपादक रविकांत के कहने पर यह तूमार बाँधा, और यों कुछ अर्थसिद्धि का कारोबार साधा। कुछ हो भी गयी, कुछ और हो जाए। सराय का चंदा दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जाए। लेकिन इसके अलावा भी एक वजह है, वह यह कि उस दिन एक टीवी प्रोग्राम के चक्कर में श्री बी.पी. सिंघल के दर्शन भए जो नासा के खींचे फ़ोटू के आधार पर रामजी के सेतुबंध का अस्तित्व प्रमाणित कर गए। अपना चित्त प्रसन्न भया। सारा संदेह दूर गया। सिंघल जी निश्चिंत, उनका प्रसिद्ध "परिवार" निश्चिंत कि अब तो रामजी पर अंकल सामजी की मोहर लग गयी। अमेरिकी स्वीकृति से बेचारों की राम-कथा समुद्र तर गयी। अमेरिका को न सुहाते तो पता नहीं इन आजकल के रामभक्तों को राम भाते या न भाते! इतना गद्गद् कर देने वाला अनुभव था बी.पी.सिंघल साहब की सिंह गर्जना सुनना और ऊपर से उन्हीं के श्रीमुख से तुम्हारे अस्तित्व के अकाट्य प्रमाण गुनना कि पत्र लिखे बिना मन नहीं माना। यों कसक तो रह गयी मन में कि दिव्य दर्शन आपके नहीं हुए लेकिन कमी पूरी भई प्रवचन से जो प्रवास में सेवक ने नियमित रूप से सुने। कोई ज्ञानी कहते भए कि आप आई.एस.आई का किरदार हैं तो कोई कहते भए कि आप बजरंगबली का क्रुद्धावतार हैं। किन्हीं ने कहा कि आप कल्पना का चमत्कार हैं तो किन्हीं ने कहा कि आप प्रदूषण के पुरस्कार हैं। एक बोले कि आप उन्हीं को दिखे जिन्होंने नशा किया, दूजे कहे कि आप तो हैं कलेक्टिव हिस्टीरिया जिसने देखते-देखते दिल्ली का दिल जीत लिया। ये सब सुनकर अपन को याद भए बरसों पहले के ग्वालियर के श्री चंपतिया। वे भी यों ही आप की ही भाँति अवतरे थे और ग्वालियर निवासियों के हृदय में महीनों तक घर करे थे। हाँ, ये ज़रूर है कि उन्हें न टीवी पर चर्चित होने का सुख मिला, न *वॉशिंगटन पोस्ट* में ख़बर बनने का। वक़्त वक़्त की बात है; वक़्त की ही सब ख़ुराफ़ात है। एक वक़्त वो था जब चंपतियाजी सीधे-सीधे डिसमिस होते भए, एक वक़्त ये है जब आप ओवरनाइट सेलेब्रिटी बन गए। दिल्लीवासियों के दिल में बसे सो बस ही गए।

IV

यों तो भैया लोग कहते हैं कि दिल के साथ दानिश भी ज़रूरी है; हृदय के साथ बुद्धि मनुष्य की मजबूरी हैं लेकिन अपनी इक्कीसवीं सदी के पोस्ट-मॉडर्न दौर में तो दानिश हो या बुद्धि — वैसे ही कल्चरल मार्जिन पर पहुँच गयी हैं, वहीं भली ठहरी — बड़ी दुःखदायी होवे है दानिस ससुरी। सो, प्रभु आप थे कलेक्टिव हिस्टीरिया — अपने लिए तो बन गए आप कल्चरल ऐण्ड पर्सनल नॉस्टैल्जिया, सो अपन ने ये ख़त आपको लिख दिया।

ये सराय वाले दोस्त-यार चाहते थे इस वर्ष इस नगर के कुछ समाचार। पढ़े-लिखे ठहरे। शहर का हाल-चाल, हालात का लेखा-जोखा, सालभर का देखा-भोगा दर्ज करने को पढ़े-लिखे लोग नहीं उत्सुक होंगे तो कौन होगा? लेकिन भैया मंकीमैन अपना ऐसा ठहरा कि अपन पढ़े-लिखे नहीं, बस लिखे-लिखे हैं — सो उठाई क़लम ऐ दिलदार, लिख डाला ये हाले जार जिसे अल्ला सुने न सुने, तू तो सुन ही रहा है।

ये जो बीच-बीच में कुछ तुकबंदी सी हो गयी है बंधुवर — इससे उखड़ना मत। ये तो कुछ आउटडेटेड क़िस्म के कवियों की कुसंगति का प्रसाद है — वरना आजकल तो ऐन कविता के बीचोंबीच भी प्रोज़ ही आबाद है। जीवन हो या कविता — नगर हो या महानगर — तुक दिखे तब न, बची हो अगर!

एक सवाल सदियों से दुःखी किए है तुम्हारे वंशधरों को मित्रवर! लगता है तुम उसका सही उत्तर दे सकते हो। ट्राय मारे में क्या हर्ज है, बात यों है कि तुम सचमुच इस बात के ठोसतरीन प्रमाण हो कि हर वर्तमान में कुछ अतीत तो व्यापा ही रहता है। तुम — "मैन" हो लेकिन मंकी भी हो। नर हो, वानर भी हो। वर्तमान तो हो ही — अतीत के आगर भी हो — बल्कि थोड़ी तुक और झेलो तो भविष्य की गागर भी हो। इसीलिए सोचता हूँ कि इस शंका समाधान के लिए तुम्ही को कष्ट दूँ। निश्चिंत रहो मित्र — शंका लघु ही है, दीर्घ नहीं।

V

सो शंका इस प्रकार है। नैमिषारण्य में बैठने वाली ऋषियों की एसेंबली से लेकर सारे ज्ञानियों, सुधियों, बुधियों की चेतना से जो कुछ प्रोडक्ट और बाय-प्रोडक्ट हमें प्राप्त हुए हैं, उनका सार मैंने यथामति यों समझा है कि मनुष्य के मा.चो. होने में तो कोई संदेह है नहीं। प्रश्न केवल यह है कि मनुष्य मा.चो. मूलतः है या भूलतः? इस प्रश्न पर अपन आगे भी लघु-दीर्घतर-नातिदीर्घ विमर्श करेंगे लेकिन सोचो ज़रूर इस पर — इस यक्ष प्रश्न पर कि मनुष्य मूलतः मा.चो. है या भूलतः?

माचो समझ गए न? वो आंग्ल-भाषा वाला नहीं — फ़ारसी देशज के समास वाला! यों तो ये सराय वाले मित्र अपने 'ओरल' के बड़े साधक हैं, सो ओरल ट्रैडिशन के इस परमलोकप्रिय पद को बिना संकेत के भी लिखा जा सकता है, लेकिन भैया संस्कार बड़े से बड़े साधक के यहाँ बाधक बन जाते हैं — सो जो लिखा वही पढ़ना — मा.चो. को ठीक से गढ़ना और इस मूलचूल, बुनियादी फ़ंडामेंटल सवाल पर ग़ौर करना। इंतज़ार करेंगे — आप के प्रज्ञापूर्ण प्रत्युत्तर का।

वैसे, ये अफ़सोस तो बना ही रह गया कि आपके प्रभाव से प्रेरित और आपकी व्याप्ति से विकल दिल्ली नगरिया का वातावरण प्रत्यक्ष न सुन पाए न देख पाए। कुछ महीने और रुक जाते तो क्या हर्ज था गुरु? कहाँ बिलाय गए? बता तो जाते कि गए कहाँ और क्यों? असर यज्ञ-हवन का पड़ा या पुलिस ऐक्शन का? प्रभाव महामानवसागर वासी भारत जन का पड़ा या जॉर्ज जी के, मोदी जी के परमप्रिय ऐक्शन-रिऐक्शन का? रौब तुमने होम मिनिस्टिर के बयान का खाया या ज्ञानियों के ज्ञान का?

चलो, कोई बात नहीं। ज़रूरत तो हमें तुम्हारी, तुम जैसों की, बार-बार पड़ेगी — मुलाक़ात इस बार नहीं तो फिर किसी बार होगी ही। तब तक पत्राचार ही सही — 'मूलतः भूलतः' वाली गुत्थी पर तुम्हारी राय का इंतजार ही सही!